RNI 26281/74 रजि.नं. पी.बी./जे.एल.-011/2018-20

ओ३म्

साप्ताहिक

आर्य मर्यादा

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब का प्रमुख पत्र

वर्षः 45, अंक : 29 एक प्रति 2 : रुपये

कुल पृष्ठ : 8

रविवार 11 अक्तूबर, 2020

विक्रमी सम्वत् 2077, सृष्टि सम्वत् 1960853121

दयानन्दाब्द : 196 वार्षिक शुल्क : 100 रुपये

आजीवन शुल्क : 1000 रुपये

दूरभाष : 0181-2292926, 5062726

E-mail: apspunjab2010@gmail.com,

www.aryapratinidhisabha.org

वर्ष–45, अंक : 29, 8-11 अक्तूबर 2020 तदनुसार 26 आश्विन, सम्वत् 2077 मूल्य 2 रु०, वार्षिक 100 रु० आजीवन 1000 रु०

मृत का जीव

लेo–स्वामी वेदानन्द (दयानन्द) तीर्थ

अनच्छये तुरगातु जीवमेजद् ध्रुवं मध्य आ पस्त्यानाम्।
जीवो मृतस्य चरति स्वधाभिरमर्त्यो मर्त्येना सयोनिः।।

–ऋ. १।१६४।३०

शब्दार्थ–ध्रुवम् = ध्रुव = अविनाशी **जीवम्** = जीव को **अनत्** = जीवन देता हुआ, **तुरगातु** = इन्द्रियों को सञ्चालित करता हुआ, **एजत्** = सबको गति देता हुआ ब्रह्म **पस्त्यानाम्** = घरों के, शरीरों के **मध्ये** = बीच में **आ+शये** = पूर्णरूप से रहता है। **मृतस्य** = मरे का **अमर्त्यः** = अमृत **जीवः** = जीव **स्वधाभिः** = अपनी स्वाभाविक शक्तियों के द्वारा **मर्त्येन** = मरणधर्मा शरीर के साथ **सयोनिः** = समान स्थान होकर **आ+चरति** = व्यवहार करता है।

व्याख्या–परमात्मा जीव को जीवन=प्राण देता है। वह इसकी इन्द्रियों को गति देता है। इन सबके साथ रहता है, किन्तु इनसे पृथक् है। तलवकार ऋषि ने इस पूर्वार्ध का भावार्थ ही मानो कहा है–'**श्रोत्रस्य श्रोत्रं मनसो मनो यद्वाचो ह वाचं स उ प्राणस्य प्राणश्चक्षुषश्चक्षु....**' [केनो० १।२]–वह जो कान का कान, मन का मन, वाणी की वाणी है, वही प्राण का प्राण और आंख की आँख है।

यद्वाचाऽनभ्युदितं येन वागभ्युद्यते।।४।।
यन्मनसा न मनुते येनाहुर्मनो मतम्।।५।।
यच्चक्षुषा न पश्यति येन चक्षूँषि पश्यति।।६।।
यच्छ्रोत्रेण न शृणोति येन श्रोत्रमिदं श्रुतम्।।७।।
यत्प्राणेन न प्राणिति येन प्राणः प्रणीयते।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते।।८।।

–२।४-८

जिसे वाणी नहीं बोल सकती, किन्तु वाणी जिससे बोलती है, जो मन से मनन नहीं किया जाता, किन्तु मन को जिससे मनन करने वाला कहते हैं, जो आँख से नहीं दीखता, किन्तु आँखें जिससे देखती हैं, जो कान से नहीं सुना जाता, किन्तु कान जिससे सुनता है, जो प्राण से नहीं जीता, किन्तु प्राण जिससे चलता है, उसी को तू ब्रह्म जान, न कि उसको जिसकी लोग उपासना करते हैं। यह वेद के अनत् तुरगातु, एजत् शब्दों की बहुत हृदयग्राहिणी व्याख्या है।

उत्तरार्ध में जीव के सम्बन्ध में जो बात कही है, वह भी मनन करने योग्य है। अमृत = अविनाशी जीव ने विनाशी मरणधर्मा के साथ मैत्री की है और उसके साथ ठिकाना आ बनाया है। अब अमर्त्य जीव और मर्त्य शरीर इकट्ठे रह रहे हैं और इस अमर्त्य=अमृत=जीवनमय जीव ने मृतक देह को भी जीवित बना रखा है। कैसा अद्भुत चमत्कार है! और चमत्कार देखिए–अमर्त्य जीव मर्त्य देह को छोड़ जाए तो देह मिट्टी हो जाए, अस्पृश्य हो जाए, किन्तु देह यदि जीव को छोड़ जाए तो वह अपनी स्वधा से विचरने लगे–'**जीवो मृतस्य चरति स्वधाभिः**' = मृतक का जीव अपनी शक्तियों से विचरता है। कितने हैं जो इस रहस्य को देखते हों? और फिर विचारते हों?

(स्वाध्याय संदोह से साभार)

सहृदयं सांमनस्यमविद्वेषं कृणोमि वः।
अन्यो अन्यमभि हर्यत वत्सं जातमिवाघ्न्या।।

–अथर्व. ३.६०.१

भावार्थ–परमकृपालु परमात्मा हमें उपदेश देते हैं, कि हे मेरे प्यारे पुत्रो! तुम लोग आपस में एक-दूसरे के सहायक और आपस में प्रेम करने वाले बनो, आपस में वैर-विरोध आदि कभी मत करो, जैसे गौ अपने नवीन उत्पन्न हुए बछड़े से अत्यन्त प्रेम करती और उसकी सर्वथा रक्षा करती है, ऐसे आप लोग आपस में परम प्रेम करते हुए एक दूसरे की रक्षा करो, कभी आपस में वैर-विरोध आदि न किया करो, तभी आप लोगों का कल्याण होगा अन्यथा कभी नहीं। यह उपदेश आप का कल्याण करने वाला है इसको हमें कभी नहीं भूलना चाहिये।

ब्रह्मणा भूमिर्विहिता ब्रह्म द्यौरुत्तरा हिता।
ब्रह्मेदमूर्ध्वं तिर्यक् चान्तरिक्षं व्यचो हितम्।।

–अथर्व. १०.२.२५

भावार्थ–एशिया, यूरोप, अमरीका और अफ्रीका आदि खण्डों से युक्त सारी पृथिवी और पृथिवी में रहने वाले सारे प्राणी परमात्मा ने रचे हैं। उस परमात्मा ने ही सूर्य से ऊपर का हिस्सा जिसको द्युलोक कहते हैं वह भी ऊपर स्थापित किया और मध्य का यह अन्तरिक्ष लोक जो ऊपर और नीचे तिरछा सर्वत्र फैला हुआ है उस परमात्मा ने बनाया है।

पूर्णात् पूर्णमुदचति पूर्णं पूर्णेन सिच्यते।
उतो तदद्य विद्याम यतस्तत् परिषिच्यते।।

–अथर्व. १०.८.२९

भावार्थ–सर्वत्र परिपूर्ण परमात्मा से यह संसार सर्वत्र पूर्णतया उत्पन्न हुआ। उस पूर्ण परमात्मा ने ही इस जगत् रूपी वृक्ष का सिंचन किया है, उस परमात्मा के जानने में हमें विलम्ब नहीं करना चाहिये क्योंकि हमारे सबके शरीर क्षणभंगुर हैं। ऐसा न हो कि हमारी मन-की-मन में रह जाए और हमारा शरीर नष्ट हो जाए। इसलिए वेद ने कहा 'तदद्य विद्याम' उस परमात्मा को हम आज ही जान लेवें।

''महर्षि दयानन्द के जीवन में कितनी बार आये मृत्यु प्राप्ति के क्षण''

ले.-पं. खुशहाल चन्द्र आर्य C/o गोबिन्द राय आर्य एण्ड सन्ज़ १८० महात्मा गान्धी रोड़, (दो तल्ला) कोलकत्ता-700007

महर्षि देव दयानन्द के जीवन में अनेकों ऐसे क्षण आए जिनमें महर्षि जी को अपने जीवन का जोख़िम उठाना पड़ सकता था। परन्तु महर्षि जी अपने साहस, धैर्य, बल, कुशाग्र बुद्धि, तथा ईश्वर पर अटूट विश्वास के कारण वे अपने जीवन को बचा सके। मैंने महर्षि जी के जीवन का जितना अध्ययन किया है जिनमें निम्नलिखित क्षण ऐसे आए हैं जिनमें उनका जीवन समाप्त हो सकता था। परन्तु महर्षि जी के भाग्य ने उनका साथ दिया। जिससे वे अपने जीवन को बचा सके।

वे क्षण या मौके इस भाँति है...

१. बचपन की घटना-महर्षि देव दयानन्द अपने माता-पिता की प्रथम सन्तान थे, इसलिए बड़े लाड-चाव से पाले गये थे। इनको गहने, अंगूठी, मूल्यवान कपड़ों से सजाकर रखते थे। इनको खिलाने-पिलाने, नहाने-धोने के लिए एक नौकरानी यानि दायी रखी हुई थी। वह दयानन्द के बचपन का नाम मूलशंकर को खिलाती, पिलाती, नहलाती, धुलाती, थी। एक दिन मूलशंकर के काफी गहने व मूल्यवान कपड़े पहना देखकर दायी के मन में लालच आ गया। और वह सोचने लगी की किसी नदी किनारे इस बच्चे को ले जाकर इसके गहने-अंगूठी तथा मूल्यवान कपड़े उतार कर मैं रख लूंगी और बच्चे को मारकर नदी में बहा दूंगी। ऐसा ही करने के लिए वह मूलशंकर को नदी के किनारे ले गई और उसके गहने-अंगूठी उतारने लगी तभी मूलशंकर ने दया भरी नजर से दायी को देखा तो उसदा का मन पिघल गया और गहने न उतारकर उसको घर ले गई। यह घटना स्वामी दयानन्द की प्रथम मौत से बचने की घटना है। यह घटना महर्षि की प्रत्येक जीवनी में नहीं लिखी है परन्तु किसी किसी जीवनी में लिखी है सो जानना।

२. दुर्गा के भक्तों द्वारा मारने का प्रयास:-तंगनाथ पर्वत की तलहटी से चलकर महर्षि जी कुछ आगे बढ़े तो उनको कुछ झोपड़ियाँ दिखाई दी जिसमें रात्रि विश्राम के लिए बस्ती में चले गये। बस्ती निवासियों ने महर्षि जी की बड़ी सेवा की और विनम्र प्रार्थना की कि आप कुछ दिन यहीं ठहर जाओ। महर्षि जी ने उनके प्रेम को देखकर वहीं कुछ दिन ठहरने का निश्चय किया। वह बस्ती दुर्गा भक्तों की थी। दुर्गा पर्व आ गया तो वे सब भक्त लोग महर्षि जी को दुर्गा मन्दिर में ले गये। मन्दिर के द्वार पर एक मजबूत देहधारी व्यक्ति हाथ में खाण्डा लिए हुए देखा। महर्षि जी मूर्ति के समीप पहुँच गये। वहीं अधेड़ आयु का पुजारी खड़ा था। साथ आये दुर्गा के भक्तों ने कहा ''स्वामी जी एक बार आप दुर्गा के सम्मुख नतमस्तक होकर प्रणाम अवश्य कीजिए।'' स्वामी जी ने दृढ़ता पूर्वक कहा-''मैं मूर्तिपूजक नहीं हूँ। इस पर पुजारी क्रोधित हो गया और उसने स्वामी जी की गर्दन को कस कर पकड़ा और मूर्ति के सामने झुकाना चाहा, पर वह उस देह की गर्दन को हिला भी नहीं सका। स्वामी जी मुड़े तो एक खड़गधारी व्यक्ति उनकी गर्दन पर वार करना चाहता था। तो सिंह सी स्फूर्ति से खड़ग उसके हाथ से छीन कर मन्दिर के प्रांगण में निकल आये। वहाँ कई दुर्गा-भक्त हाथों में शस्त्र लेकर उन पर टूट पड़े। स्वामी जी तेजी से खड़ग घुमाते हुए मन्दिर की दीवार फाँद कर अन्धेरे में विलीन हो गये। इस प्रकार स्वामी जी ने अपनी जान बचाई।

३. रींछ का सामना करने की घटना:-बदरीनारायण से रामपुर होते हुए स्वामी जी काशीपुर पहुँच गये। वहाँ से उत्तर-भारत का भ्रमण करके नर्मदा के तट पर पहुँचने के बाद उसके आदि स्रोत की ओर इस आशा से चल पड़े कि सम्भव है कहीं किसी विलक्षण सन्त के दर्शन हो सकें। रास्ता विकट था, कुछ दूरी तक पगडण्डियों के निशान मिले। धीरे-धीरे वे भी विलुप्त हो गये। बस्ती होने का कहीं कोई संकेत नहीं दिखता था। किधर जाना चाहिए, स्वामी जी सोच ही रहे थे कि सामने से एक विशालकाय काला रींछ दौड़ता हुआ आता दिखाई दिया। वह कुछ दूरी पर ठहर कर पिछले पैरों पर खड़ा हो गया और जोर से चिघाड़ा। वह उन पर वार करना ही चाहता था कि स्वामी जी ने स्फूर्ति से अपना डण्डा जैसे ही उसकी तरफ बढ़ाया, वह उनके सामने ठहर न सका। परन्तु जाते समय रींछ इतनी जोर से चीखा कि उसकी आवाज सुनकर पहाड़ी लोग अपने कुत्तों सहित वहाँ उपस्थित हो गये और स्वामी जी से बस्ती में आने की प्रार्थना की। परन्तु स्वामी जी ने उन्हें विन्रमतापूर्वक लौटा दिया और अपनी राह पर बढ़ चलें।

४. राव कर्ण सिंह से सामना: स्वामी जी विभिन्न स्थानों में धर्म चर्चा और पाखण्डों का खण्डन करते हुए सम्वत् १८२४)सन् 1868 ई.) के ज्येष्ठ मास में कर्णवास पहुँच गये। उस समय कर्णवास में गंगा के मेले की धूम थी। उस अवसर पर करौली के रईस राव कर्ण सिंह भी अपने दल-बल सहित गंगा स्नान के लिए आए हुए थे। उन्होंने एक ओर गंगा के किनारे मण्डप बनवा रासलीला का आयोजन किया। मेले में पधारे सभी साधु-सन्तों और पण्डितों को उसमें आमन्त्रित किया। उसका आमन्त्रण महर्षि जी को भी मिला, परन्तु महर्षि जी उसमें सम्मिलित नहीं हुए और रासलीला का खण्डन करते रहे। अगले दिन राव कर्ण सिंह अपने समर्थकों सहित महर्षि जी की कुटिया पर आ पहुँचे और क्रुद्ध होकर बोले ''सभी साधु सन्त हमारी रासलीला में पधारे! आप क्यों नहीं आये?'' महर्षि जी उसकी भाव-भंगिमाओं से उसका उद्देश्य समझ गये थे। उन्होंने उत्तर दिया-''हम ऐसे निन्दनीय कृत्यों में सम्मिलित नहीं होते है।''

क्रोध से उसके नेत्र लाल हो गये। वह गरज कर बोला ''आप रासलीला को निन्दनीय कृत्य कहते है, आप गंगा और अवतारों की निन्दा भी करते हो। मैं इनकी निन्दा करने वालों के साथ अच्छा बर्ताव नहीं करता हूँ। आपको सम्भल कर बोलना चाहिए और उसका हाथ तलवार की मूठ पर चला गया। महाराज के उपदेश सुन रहे सज्जनों के चेहरे पर अनिष्ट घट जाने के भाव अंकित होने लगे। परन्तु महर्षि जी सहज भाव से बोले, ''हम किसी की निन्दा नहीं करते है, जिसे जैसा देखते है वैसा ही कहते है। हमारे सामने कोई हमारे महापुरूषों का स्वांग भरे और हम उसे देखते रहें, यह कार्य अति निन्दनीय है। अति निर्बल व्यक्ति भी अपने पूर्वजों के स्वांग को सहन नहीं कर सकता। आप अपने महापुरूषों का ऐसे व्यक्तियों द्वारा स्वांग भराते हो जो आचरण पतित है। ऐसे कार्य करते हुए लज्जा आनी चाहिए।

महर्षि जी की यह वार्ता सुनकर राव कर्ण सिंह आपे से बाहर हो गये। वे अपनी तलवार लेकर उठ खड़े हुए। उनके साथ उनके समर्थक भी खड़े हो गये। शस्त्र भी उनके पास थे। ऐसा देखकर श्रद्धालुजन घबरा गये, परन्तु महर्षि जी ने मुस्कुराते हुए कहा-''कर्ण सिंह साधुओं से शास्त्रार्थ किया जाता है। यदि आपको शस्त्रार्थ करना ही है तो फिर-महाराजा जयपुर या जोधपुर से जाकर भिड़ना चाहिए और यदि शास्त्रार्थ करना चाहते हो तो वृंदावन से अपने गुरू रंगाचार्य को ले आइए।

गुरू का नाम सुनते ही राव कर्ण सिंह की आँखों में खून उतर आया। उसने तलवार को म्यान से बाहर निकाल लिया और महर्षि जी को अपशब्दों से सम्बोधित किया। यह दृश्य देख श्रोताओं की साँसे रूक गई। राव कर्ण सिंह क्रोध में अन्धा हो गया था। उसने तलवार वाला हाथ ऊँचा किया और महर्षि जी की ओर बढ़ा। महर्षि जी सम्भल कर बैठे हुए थे। उन्होंने स्फूर्ति के साथ उसका खड़ग वाला हाथ की कलाई से पकड़ लिया और इतने बल से दबाया कि उसके हाथ से तलवार छूट गई। उसे पसीना आ गया, चेहरे पर हवाइयाँ उड़ने लगी। महर्षि जी ने बांए हाथ से तलवार की मूठ पकड़ उसकी नोंक को धरती पर टेक कर इतने जोर से दबाया की तलवार के दो टुकड़े हो गये। महर्षि जी ने कहा-''हम सन्यासी है! जाओ परमात्मा तुम्हारा हित करे और तुम्हें सद्बुद्धि प्रदान करे।

(शेष पृष्ठ 7 पर)

सम्पादकीय

मानसिक विचारों के प्रति भी स्वच्छता अभियान चलाएं

प्रतिवर्ष 2 अक्तूबर को गांधी जयन्ती के अवसर पर स्वच्छता अभियान चलाया जाता है। नेता लोग इस दिन झाड़ू उठाकर सड़कों पर कुछ समय के लिए नौटंकी करते हैं और कुछ ही समय के पश्चात उनका यह अभियान त्यौहार की तरह समाप्त हो जाता है। प्रतिवर्ष इसी प्रकार औपचारिकता निभाई जाती है परन्तु वास्तव में किसी ने भी इसे गम्भीरता से नहीं लिया है। प्रधानमन्त्री ने 2014 में इस स्वच्छता अभियान का शुभारम्भ किया था परन्तु लोग अभी तक इसे पूर्ण रूप से अपना नहीं पाए हैं। शहरों में सड़कों पर कूड़ा इधर-उधर बिखरा हुआ देखने को मिलता है। जहां जिसका मन करे वहां पर कूडा फैंक देते हैं। लोगों के मन में यह धारणा बनी हुई है कि अपने घर से बाहर कूड़ा निकलना चाहिए। जब तक यह धारणा बनी रहेगी तब तक हम कभी भी इस लक्ष्य को पूरा नहीं कर सकते।

इसके साथ ही जब हमारे मन से बुरे विचार दूर नहीं होते तब तक हम कभी भी सकारात्मक सोच नहीं रख सकते। सकारात्मक विचारों के लिए जरूरी है कि हम अपनी मानसिक गंदगी के प्रति भी स्वच्छता अभियान चलाएं। आज समाज में चारों तरफ विचारों की गंदगी फैली हुई है। मीडिया के द्वारा, राजनीतिक दलों के द्वारा लोगों को हर समय गुमराह किया जा रहा है। लोगों के मन में विद्वेष, ईर्ष्या के विचारों को भरा जा रहा है। जिससे ग्रसित होकर मनुष्य अच्छे बुरे का विवेक छोड़कर मानवता का दुश्मन बन जाता है। मीडिया और राजनीतिक दलों के द्वारा किस प्रकार लोगों को गुमराह किया जाता है इसे समझने के लिए एक उदाहरण प्रस्तुत कर रहा हूँ-

एक गधा पेड़ से बंधा था। एक शैतान आया और उसे खोल गया। गधा मस्त होकर खेतों की ओर भाग निकला और किसान की लहलहाती खड़ी फसल को खराब करने लगा। किसान की पत्नी ने गधे को फसल खराब करते देखा तो उसने गुस्से में गधे को मार ड़ाला। गधे की लाश देखकर गधे के मालिक को गुस्सा आया और उसने गुस्से में किसान की पत्नी को मार ड़ाला। किसान अपनी पत्नी की मौत से इतना दु:खी था कि उसने गधे के मालिक को गोली मार दी। गधे के मालिक की पत्नी ने जब अपने पति की मौत का समाचार सुना तो उसे अपने बेटों को किसान का घर जलाने का आदेश दिया। बेटे शाम को गए और अपनी माँ के आदेश का पालन करते हुए किसान के घर को जला दिया और उन्होंने सोचा कि किसान भी इसमें जल कर मर गया होगा। लेकिन ऐसा नहीं हुआ, किसान वापिस आया और उसने गधे के मालिक की पत्नी और बेटों की हत्या कर दी। इसके बाद किसान को पछतावा हुआ और उसने शैतान से पूछा कि यह सब नहीं होना चाहिए था, ऐसा क्यों हुआ? शैतान ने समझाया कि मैंने तो सिर्फ गधे को छोड़ा था, बाकि सब तो तुम लोगों ने किया। मैंने सिर्फ एक छोटी सी क्रिया की जिसकी प्रतिक्रिया आप लोगों ने इतनी कर दी कि अब पछताने से कुछ नहीं हो सकता।

यही शैतान का काम आज मीडिया और राजनीतिक दलों के द्वारा किया जा रहा है। मीडिया या राजनीतिक दलों के द्वारा कभी जातिवाद के नाम पर लोगों को लड़ाया जाता है, कभी धर्म के नाम पर लोगों को गुमराह किया जाता है। इन शैतानों के द्वारा प्रतिदिन कोई न कोई ऐसा गधा छोड़ दिया जाता है जिससे देश में एक नई बहस छिड़ जाती है। मीडिया को लोकतन्त्र का चौथा स्तम्भ कहा जाता है परन्तु मीडिया अपने इस उत्तरदायित्व का निर्वहन अच्छी प्रकार से नहीं कर पा रहा है। आज का मीडिया दो धड़ों में बँट चुका है। एक सत्ताधारी पार्टी का गुणगान करना अपना कर्त्तव्य समझता है और दूसरा धड़ा विपक्ष का गुणगान और हर कार्य में सरकार का विरोध करना अपना कर्त्तव्य समझता है। किसी सही मुद्दे पर भी दोनों धड़ों का एक न होना राष्ट्र के लिए हानिकारक है। लोग इन्हीं के आधार पर अपनी राय बनाते हैं और अपनी प्रतिक्रिया देते हैं।

सबसे पहली घटना एक फिल्मी अभिनेता सुशांत सिंह राजपूत का आत्महत्या करना जो आज भी मीडिया के लिए मुद्दा बना हुआ है। देश में प्रतिदिन हजारों आत्महत्याएं होती हैं परन्तु मीडिया ने अपनी टी.आर.पी. को बढ़ाने के लिए इस आत्महत्या को अभी भी मुद्दा बनाया हुआ है। जब इतनी जाँच एजेंसियां इस मामले की जाँच कर रही हैं तो मीडिया का लोगों को गुमराह करना बहुत दुर्भाग्यपूर्ण है। कहीं इस घटना को राजनीति के साथ जोड़ कर देखा जा रहा है तो कहीं पर अपने स्वार्थ के लिए इस घटना को जिंदा रखा हुआ है।

दूसरी घटना केन्द्र सरकार द्वारा किसानों के हित में पास किए गए बिल हैं जिन पर राजनीतिक दलों के द्वारा खूब राजनीति की जा रही है। राजनीतिक दलों के द्वारा किसानों के हितैषी होने के नाम पर भोले-भाले किसानों को गुमराह किया जा रहा है। आज हर राजनीतिक दल किसानों के हितैषी होने का दावा कर रहे हैं। इतने सालों तक सत्ता की मलाई खाने वाले आज किसान हितैषी होने का ढ़ोंग कर रहे हैं। किसान आन्दोलन के नाम पर देश की सम्पत्ति को नुक्सान पहुँचाया जा रहा है, रेलवे ट्रैकों पर धरने दिए जा रहे हैं। ट्रैक्टर के ऊपर सोफे लगाकर रैलियाँ निकाली जा रही हैं। जो ट्रैक्टर के ऊपर भी बिना सोफे के नहीं बैठ सकते वो किसानों का दर्द क्या समझेंगे? इस बात से बेचारे सीधे-सादे किसान अनजान हैं। मीडिया को इस मुद्दे पर एक होना चाहिए था परन्तु राजनैतिक मतभेदों के चलते मीडिया भी इसमें अपनी-अपनी डफली बजा रहा है।

तीसरी घटना अभी हाल ही में उत्तर प्रदेश के हाथरस में हुई उसमें भी यही सब देखने को मिल रहा है। सभी राजनीतिक दल इसमें अपनी-अपनी रोटियां सेंकने का कार्य कर रहे हैं। कोई जातिवाद को मुद्दा बना कर लोगों को दंगे फैलाने के लिए उकसा रहे हैं। ऐसी बीभत्स घटनाओं में राजनीतिक रोटियाँ सेंकना देश के लिए बहुत दुर्भाग्यपूर्ण है। हर सभ्य व्यक्ति चाहे वह किसी भी जाति या विचारधारा या राजनीतिक दल से हो, सभी इस कुकृत्य की निंदा करते हैं। कोई भी सभ्य व्यक्ति इस घटना को सही नहीं ठहरा सकता परन्तु जब यही घटना जातिवाद का रूप ले लेती है तो लोग अपनी-अपनी जाति के समर्थन में, राजनीतिक दलों के उकसावे में आकर दंगे फैलाने का कार्य करते हैं। यही उत्तर प्रदेश में भी होता अगर समय रहते उत्तर प्रदेश सरकार सचेत न होती । मीडिया के द्वारा इस प्रकार सनसनी फैलाई जाती है कि मानो सबसे बड़े न्यायाधीश वही हो। ऐसे मुद्दों पर मीडिया का एक होना ही देश के हित में है। मीडिया द्वारा भ्रामक रिपोर्ट को सच मानकर उसे सोशल मीडिया में एक दूसरे को शेयर किया जाता है जिसके बहुत ही भयंकर परिणाम देखने को मिलते हैं। ऐसी संवेदनशील घटनाओं में पूरे समाज को एक होना चाहिए और इसकी कड़ी से कड़ी निंदा करनी चाहिए। इस घटना के दोषियों को निर्भया के बलात्कारियों के समान फांसी की सजा मिलनी चाहिए।

आज आवश्यकता इस बात की है कि हम अपने मानसिक विचारों के प्रति स्वच्छता अभियान चलाएं। बाहर की स्वच्छता से ज्यादा अन्दर की स्वच्छता अधिक आवश्यक है। जब तक हमारा अन्त:करण शुद्ध नहीं होगा, मानसिक विचारों की गंदगी दूर नहीं होगी तब तक समाज में इस प्रकार के कुकृत्य रोके नहीं जा सकते। बाहर की गंदगी से सिर्फ वातावरण ही प्रदूषित होगा परन्तु अन्दर की गंदगी से पूरा समाज ही दूषित हो जाएगा। समाज के दूषित होने से हमारी संस्कृति, संस्कार दूषित हो जाएंगे, जिनके दूषित होने के परिणाम आज देखने को मिल रहे हैं। इसलिए समाज के सभी जागरूक नागरिकों का कर्त्तव्य है कि वे अपने-अपने कर्त्तव्य का निर्वहन करते हुए समाज और राष्ट्र के दूषित होने से बचाएं और स्वच्छ राष्ट्र का निर्माण करें।

प्रेम भारद्वाज
संपादक एवं सभा महामन्त्री

कोई दुखी क्यों? सुखी कैसे रहें?

ले.-प्रा. भद्रसेन दर्शनाचार्य शालीमार बाग-होशियारपुर

नानाविध पहलुओं पर विस्तार से विचार किया है। इसके साथ हमें सावधान भी रहना चाहिए अर्थात् यह सोचना चाहिए, कि कोई दु:खी क्यों हो जाता है एक समझ वाले को मनपसंद प्राप्ति के लिए सदा प्रयत्नशील भी रहना चाहिए। जीवन में यदा-कदा आ जाने वाली अड़चनों, बाधाओं, आपत्तियों, दु:खों के प्रति भी सावधान रहना चाहिए।

पाप का बाप-लोकोक्ति में पाप शब्दों को अपराध, दोष, अधर्म, गलती, बुराई नाम से भी कहा जाता है।

पाप-बुराई-कोई भी बुराई को पसन्द नहीं करता है और न ही कोई इस को अच्छा मानता है। अत: कोई भी बुराई करने वाला नहीं कहलाना चाहता है। पुनरपि इस का प्रसार प्रतिदिन पनप रहा है। बुराई पैर न पसारे अर्थात् इस को रोकने, रोके रखने के लिए ही पुलिस जैसा विशेष विभाग स्थापित किया गया है। यह कितने आश्चर्य की बात है, कि प्रत्येक प्रगति चाहने वाला विचारशील बुराई को बढ़ते हुए विवशतापूर्वक देख रहा है। इस पर तब स्वत: प्रश्न, जिज्ञासा होती है, कि न चाहते हुए यह क्यों कर हो रहा है? अर्थात् इसका कारण क्या है? यहां लेख में बाप शब्द कारण अर्थ में ही है। कभी-कभी बाप की तरह मां शब्द को भी कारण के भाव को प्रकट करने के लिए प्रयुक्त किया जाता है। सभी तो कहा जाता है कि चोर को नहीं-चोर की मां को मारो', पकड़ो।'

'चोर की मां कब तक खैर मनाएगी। इसी बात की पुष्टि करते हैं। ये वचन इसी बात की पुष्टि करते हैं। यही बात संस्कृत भाषा के प्रसिद्ध वचन से सामने आती है जैसे कि-'लोभ: पापस्य कारणम्' अर्थात् पाप-बुराई का मूल कारण लोभ है। 'लालच बुरी बला है।' तभी तो गीता में गाया गया है-

त्रिविधमिंद नरकस्य द्वारम्, नाशनमात्मन: लोभ: कामस्तथा क्रोध:

तस्मादेतत् त्रयं: त्यजेत् अपने आप, आत्म सम्मान, आत्म-विश्वास और आत्मविकास जैसी अनमोल सम्पत्तियों का हर तरह से विनाश करने वाले ये तीन रूप हैं। इसीलिए ये नरक के अर्थात् नीचे से नीचे ले जाने वाले हैं और चौबीस घंटे खुले रहने वाले दु:ख के दरवाजे हैं और वे हैं काम-इच्छा, चाहना और दूसरा है, इच्छा की पूर्ति में रूकावट, बाधा बनने वाले पर उभरा क्रोध, गुस्सा, जलन इन के साथ तीसरा द्वार है-लोभ-लालच भरी सोच। अभी और यह भी की लालसा। अपना भरोसा सम्मान चाहने वाले को इन तीनों से सदा दूर रहना चाहिए। लोभ ही पाप, बुराई का मूल है। इस रहस्य को समझने के लिए महाभारत में आया दुर्योधन का यह कथन हमारे सारे भेदों को स्पष्ट कर देता है।

जानामि धर्मं न च में प्रवृत्ति:
जानामि+अधर्मम् न च मे निवृत्ति:।
के नापि देवेन हृदि स्थितेन
यथा नियुत्या अस्मि तथा करोमि।।

अपराध कैसे क्यों?

इस श्लोक में दुर्योधन की मानसिक स्थिति का चित्रण है। महाभारत काल ने उसी के मुख से कहलवाया है, कि वह अपने जीवन में ईर्ष्या-द्वेष, वैर-विरोध वाला और लालच भरा ही व्यवहार अपने स्वार्थ को साधने के लिए जान-बूझ कर ही करता हूँ। श्लोक में दुर्योधन के दिल की बात को सामने लाते हुए बताया है, मैं यह अच्छी प्रकार से जानता हूँ, कि धर्म=सुख देने वाली भलाई का ही नाम है। [परहित सरस धर्म नहीं भाई] पर फिर भी मैं वैसा नहीं करना चाहता। हां, मैं यह भी पूरी तरह से जानता हूँ, अधर्म=बुराई, पाप क्या है? फिर भी समझते हुए भी उस-उस को छोड़ना नहीं चाहता।

सब कुछ जानते हुए भी मेरे दिल में बैठी हुई स्वार्थ। स्व+अर्थ= स्व= अपना, अर्थ-प्रयोजन, मतलब। साधने की भावना है, अपनी ही मनमर्जी चलाने की ललक है। इसी दृष्टि से यह कहावत है।

अपना ही उल्लू देखो
दुनिया जाए भाड़ में

संसार का इतिहास इस का साक्षी है, कि हर युग में अपने आप को बड़ा मानने वाले अहंकारियों ने अपना ही उल्लू साधा है।

महाभारत के श्लोक के अन्तिम दो चरणों में स्पष्ट कहा है। केनापि हृदय में बैठा रहने वाला कोई एक देव जैसा कहता है, करवाता है। वैसा ही करता हूँ। यजुर्वेद के प्रसिद्ध शिव संकल्प के मन्त्रों में मन को हृतप्रतिष्ठम् और देव कहा है। मन अन्त: करण चतुष्टय में अहंकार, चित्त, बुद्धि और मन गिने जाते है। इन में से मन की चर्चा अधिक होती है। तभी तो मनमुख, मनमर्जी, मनपसन्द शब्द चलते हैं। मन का कर्म है-सोचना, विचारना तथा ज्ञान और कर्म इन्द्रियों से उन-उन का नियत कार्य कराना। वैसे तो केवल आत्मा ही चेतन है। उस की चेतना से ही अन्त:करण प्रेरित होकर अपना कार्य करता है। पुनरपि मन को मनमर्जी वाला मान कर स्वतन्त्र दिखाया जाता है। वैसे इस प्रकरण में स्वार्थभावना की प्रबलता प्रमुख बात है।

शैतान

वेद और महाभारत में मन को देव कहा गया है। सम्भवत: ऐसी ही मिलती जुलती भावना से ईसाई तथा इस्लाम शैतान को खुदा से अलग स्वतन्त्र मानने की कल्पना चली हो। इस कल्पना को सामने रख कर ही उर्दू के शायर ने व्यंग किया।

'फेल-बद तो खुद करे
लानत करे शैतान पर।।'

दुर्योधन

आजकल महाभारत शब्द लड़ाई-झगड़े के अर्थ में प्रसिद्ध हो गया है। महाभारत की कथा का खलनायक दुर्योधन है। वैसे उस का पूर्व नाम दुयोधन था। शकुनि मामा के सहयोग से पांचों पाण्डवों से जिस प्रकार ईर्ष्या-द्वेष-जलन, वैर विरोध किया। इससे भी बढ़कर उन को मारने तक का यत्न किया। इससे उस का नाम दुर्योधन हो गया। अत: वह ओज इस तरह से बदनाम माना जाता है।

शैतान की कल्पना की तरह ही विशेषत: मध्य युग भारतीय शास्त्रों में-वास्तविकता को छिपाने के लिए और अपने आप करो दोष-अपराध, गलती के दायित्व से बचने के लिए कहने का रिवाज चल पड़ा। यह जो रोग, कष्ट, दुख, आपत्ति आई है। इस का कारण-'भाग्य का खेल', 'शनि का प्रकोप', ग्रहगति, ग्रहों का चक्र ही है।

सारांश-शास्त्रों में धर्म शब्द-सत्य, सही, ठीक, उचित, सुखदायक, अच्छाई, भलाई के अर्थ में आया है। अधर्म शब्द = असत्य, गलत, अनुचित, अपराध, दोष, अनर्थ, दुखप्रद, बुराई, पाप के अर्थ में मिलता है।

अत: पाप-बुराई का फल, परिणाम नरक माना है। नरक-दोजख का चित्रण सर्वत्र-सदा दुख के रूप में मिलता है। जैसे कि निरूक्त, स्मृतिग्रन्थ, पुराण आदि में है। महर्षि दयानन्द ने 'विश्वानि देव...' मन्त्र में दुरित का अर्थ दुर्गुण-दुर्व्यसन-दु:ख किया है। इनमें कारण-कार्य रूपता है। सत्यार्थ में अनेकत्र आया है-जब तक अधर्म छोड़ते नहीं, धर्म को अपनाया नहीं तब तक सुख कहां?

प्रभु भक्ति का वैदिक स्वरूप

ले.-डॉ. सत्यदेव सिंह 507 गोदावरी ब्लाक, कृष्ण नगर मथुरा

(गतांक से आगे)

भक्ति का पहला कर्त्तव्य है कि वह यह विचार करे कि जिसको वह अपना आराध्यदेव मानने चला है, जिस सुन्दर स्वरूप को वह अपने हृदय-मन्दिर में बैठाना चाहता है उसका क्या स्वरूप है? उसकी उपासना करने पर भक्त/उपासक को अपने चरम लक्ष्य की प्राप्ति होगी या नहीं? भक्त आराध्यदेव की आराधना कैसे करें? इस सम्बन्ध में अथर्ववेद में एक सुन्दर मंत्र आता है:-

''तमुष्टुहि या अन्तः सिन्धुः मनुः। सत्यस्य युवानभद्रोघवाचं सुशेवम्।। (अथर्व. 3/1/1)

अर्थात्

हे भक्त! यदि तू सच्ची शान्ति और परम-आनन्द को प्राप्त करना चाहता है तो (तम्+उ+स्तुहि) उस ही प्रभु की उपासना कर, (यः अन्तः सिन्धुः) जो इस संसार में रम रहा है, (सत्यस्य+सुनुः) जो सदा सत्य की ओर ही प्रेरणा करता है (युवानम्) जो सदा सर्वदा युवा अर्थात् एक रस रहता है, (सुशेवम्) जो सारे बलों, सुखों और आनन्द का भण्डार है और (अद्रोघवाचम) जिसकी वाणी में किसी के प्रति असत्य, द्रोह और विश्वासघात नहीं हैं।

भक्त सोचता है मैं अपने प्रभु को कैसे मिलूं। मेरा वह प्रियतम मुझे कहाँ मिलेगा, और नानाप्रकार की तृष्णाओं और आसुरी वासनाओं रूपी तरंगों से तरंगित काम, क्रोध, राग, मोह, ईर्ष्या आदि जल-जन्तुओं से पूर्ण इस भव-सागर में मेरा कौन सहारा है? इन दोनों आशंकाओं का समाधान वेद एक ही शब्द में करता है (तमु+स्तुहि+यो+अन्तः सिन्धुः) भक्त तू उस प्रभु की स्तुति, कर वह तेरा अन्तर्यामी तो तेरे रोम-रोम में रम रहा है। फिर तुझे इधर-उधर जाने और भटकने की क्या आवश्यकता है और इसमें भी कुछ सन्देह नहीं कि यह संसार एक अथाह सागर है, और यह जीव अपनी दुर्वासनाओं और निर्बलताओं के वशीभूत होकर अहर्निश इसमें गोते खा रहा है। परन्तु यह भी ध्रुव सत्य है कि जो भक्त उस करुणामय प्रभु का आश्रय ले लेता है, उसकी प्रेममयी गोद में बैठ जाता है और उसकी शरण में आ जाता है, वह इस भव सागर से तर कर पार हो जाता है।

प्रभु प्राप्ति का लक्ष्य केवल जन्म, जरा, व्याधि और मृत्यु से छुटकारा पाना ही नहीं, प्रत्युत उससे छूटकर उस परमानन्द और परम् शान्ति को प्राप्त करना है, जिसकी खोज में जीव जन्म-जन्मान्तरों से भटक रहा है। अतः भक्त सोच सकता है कि प्रभु की उपासना से मैं जन्म-मरण के बन्धन से तो छूट जाऊँगा, किन्तु मेरा अन्तिम लक्ष्य तो परमानन्द की प्राप्ति है। क्या प्रभु-भक्ति द्वारा इसकी भी मुझे प्राप्ति होगी या नहीं? वेद, भक्त के इस संदेह को भी दूर करता है। हे प्रिय भक्त! तू इस सन्देह को भी अपने हृदय-पटल से दूर कर दे, क्योंकि तेरे आराध्यदेव परमेश्वर तो 'सुशेव' है वे सारे सुखों के भंडार है तथा परम शान्ति और पूर्णानन्द के धाम हैं। फिर यह कैसे सम्भव हो सकता है कि उस शान्ति और आनन्द के निकेतन को प्राप्त कर लेने पर तू आनन्द से वंचित रह जाए। सच्चा ईश्वर भक्त उस परम कल्याणमय प्रभु की उपासना द्वारा उसमें तल्लीन हो जाता है और इतना तल्लीन हो जाता है कि अपने को भूलकर वेद के शब्दों में साधक स्वयं कह उठता है :-

'यदग्ने स्यामहं त्वं, वा घास्याअहम्। स्युष्टेः सत्या इहाशिषः।। (ऋ. 6/44/23)

पदार्थः

अग्ने-हे प्रकाश स्वरूप!, **यत्**= जब, **अहं+तवं+स्याम्** = मैं तू हो जाऊँ, **वा घा** = या (निश्चयवाचक), **त्वं + अहं + स्याः** = तू मैं हो जाए, तो **ते+इह+आशिषः** = तेरे इस संसार के आशीर्वाद, **सत्याः+स्यु** = सत्य, सफल हो जायें।

भावार्थः-हे प्राणधान! अब तो मैं आपकी भवभय हारिणी पावन-भक्ति द्वारा तुझ में इतना लवलीन हो गया हूँ, इतना तन्मय हो गया हूँ कि-''मैं तू बन गया और तू मैं हो गया।'' अब मुझे पता लगा है कि अपने अनन्य भक्तों के प्रति तेरे कृपा कटाक्ष और आशीर्वाद कितने अटल, ध्रुव और सत्य हैं। क्योंकि हे प्रभु! अब तो 'तू हमारा है और हम तेरे हैं।' वेद की ऋचायें भी तो यही कह रही हैं:-

'त्वमस्माकं तव स्मसि'-(ऋ. 8/92/32)

वेद, जहाँ भक्त के आराध्यदेव परमात्मा के सत्य, शिव और सुन्दर स्वरूप को यथार्थरूप में हमारे सम्मुख रखता है, वहाँ भक्त का स्वरूप और कर्त्तव्यों का भी बड़ा सुन्दर वर्णन करता है। वेद का कथन है कि जो भक्त प्रभु को प्राप्त करना चाहता है, सर्वप्रथम उसके हृदय में प्रभु भक्ति की तीव्र लग्न (अभीप्सा) होनी चाहिए, उत्कट-अभिलाषा रूपी तीव्र-अभीप्सा होनी चाहिए। प्रभु प्रेम के प्रति उसे अपना सब कुछ अर्पण कर देना चाहिए।

प्रभु की प्राप्ति के लिये इतनी तीव्र लग्न, इतनी उत्कृष्ट अभीप्सा तभी उत्पन्न होती है, जब साधक या भक्त संसार के क्षणिक विषय भोगों को त्यागकर शुभकर्मों द्वारा अपना हृदय शुद्ध, पवित्र और निर्मल बना लेता है। दूसरे शब्दों में यों समझें कि जब साधक/भक्त अपने कर्मों को उस यज्ञ रूपी प्रभु-परमात्मा की छवि बनाकर, अपने जीवन को हविष्मान् अर्थात् यज्ञमय बना लेता है। इसीलिए प्रभु-प्राप्ति की तीव्र आकांक्षा रखने वाले साधक-भक्त ईश्वर से प्रार्थना करते हैं:-

''वयमिन्द्र /त्वायवो हविष्मन्तो जरामहे।

उत त्वमस्मयुर्वसो।। (ऋ 3/41/7)

हे सबके आश्रय प्रदाता इन्द्र! आपकी उत्कट-अभिलाषा करते हुए, हम हवियों से युक्त होकर आपकी स्तुति करते हैं। आप हमारी रक्षा करिए। यहाँ इन्द्र पद ईश्वर वाचक हैं।

अर्थात्-हे इन्द्र! हम तेरे उपासक भक्त या साधक हविष्मान् बनकर, अपने जीवन को यज्ञमय बनाकर, तेरी साधना करते हैं, जिससे कि 'तू हमारा और हम तेरे' बन जायें। अतः जो भक्त साधक प्रभु को अपना बनाना चाहता है, उसे वेद के कथनानुसार अपने जीवन को यज्ञमय बनाकर प्रभु-परमात्मा का बन जाना होगा। वेद ने तो प्रभु का नाम ही 'यज्ञसाध' रखा है, तात्पर्य कि, साधना यज्ञ द्वारा ही हो सकती है। आगे वेद कहता है:-

''तमीडत प्रथमं यज्ञ साधम् विश आरीराहुतमृंजनसानम्।

ऊर्जः पुत्रं भरतं सृप्रदानुं देवा अग्निं धारयनद्रविणोदाम्।।

(ऋ. 1/96/3)

हे प्रभुप्राप्ति के अभिलाषी जनो! याद रखो वह मंगलमय प्रभु 'यज्ञसाध' है। अतः यदि तुम उसे प्राप्त करना चाहते हो तो यज्ञ साधना द्वारा ही उसकी स्तुति, प्रार्थना व उपासना करो, क्योंकि देवताओं ने उन धन-प्रदाता अग्निदेव को दूतरूप में धारण किया है।

वह प्रभु ''यज्ञसाध'' है, इसलिये ही तो वेद ने कहा है:-

''यज्ञेन वर्धत जातवेदसमग्निम् यजध्वं हविषात-नागिरा।

समिधानं सुप्रयसं स्वर्णरं द्युक्षं होतारं वृजनेषु धूर्षदम्।।''

(ऋ. 2/2/1)

अतः हे मनुष्यो! उस वेद-ज्ञान के भण्डार परमात्मा-ज्योति को यज्ञ द्वारा ही अपने हृदय मन्दिर में प्रकाशित करो और अपने यज्ञमय कर्मों की हवि द्वारा एवं प्रेमरस भरी उदार वाणी द्वारा उसके पवित्र नाम 'ओ३म्' का स्मरण और उसके पवित्र गुणों का कीर्तन करते हुए, उस परम-ज्योति को प्रतिदिन अपने हृदय-मन्दिर में बढ़ाते चलो।

अन्त में यह कहना उचित ही होगा कि प्रत्येक साधक/भक्त को, परम-प्रभु के शरणागत होकर पूर्ण समर्पण के साथ विनम्र भाव से प्रार्थना-उपासना-याचना करनी चाहिए।

'मुख किसी और का, पेट किसी और का'

ले.-रामफल सिंह आर्य तृतीय तल, आनन्द विहार उत्तम नगर नई-दिल्ली 110059

हमारे इस लेख का शीर्षक आपको कुछ विचित्र सा लग रहा होगा परन्तु यह सत्य है कि ऐसा मानने वाले और उसी के अनुसार कार्य करने वाले लोगों की संख्या दो चार सौ, हजार या दो चार लाख नहीं अपितु कई करोड़ों में है। हम यह भी कह सकते हैं कि भारत में जितनी जनसंख्या हिन्दुओं की है, उसमें से लगभग 90 प्रतिशत लोग ऐसे ही हैं। वे यह विश्वास रखने वाले हैं कि भोजन कोई करे और पेट किसी और का भर जाये। इसे यूं भी कह सकते हैं कि मर्ज किसी को और दवा किसी और को। उस पर भी आश्चर्य यह कि जिसका पेट भरने की बात की जा रही है, वह तो इस संसार में है ही नहीं। क्यों चौंक गये न? परन्तु, बात है बिल्कुल सच्ची। केवल भोजन किसी दूसरे तक पहुंच गया हो इतना ही नहीं अपितु कोई उत्सव, विवाह आदि शुभ-कार्य, खरीददारी, आदि भी न होने से बाजार तक सूने पड़ जाते हैं। यहां तक कि कई लोग तो दाढ़ी आदि बनवाना भी अशुभ ही मानते हैं। जी हां! अब आप समझ गये होंगे कि हमारा संकेत श्राद्धों की ओर है। पितृपक्ष का यह समय ही ऐसा है कि जब लोग अपने पूर्वजों का श्राद्ध करने में लगे होते हैं। उनका विश्वास ऐसा है कि इस समय पितर लोग अर्थात् मरे हुए पूर्वज इस समय भोजन करने के लिये धरती पर आते हैं और ब्राह्मणों के माध्यम से भोजन करके तृप्त होकर पुनः अपने-अपने स्थानों पर लौट जाते हैं। पितर कौन हैं, कहां पर रहते हैं, कैसे लौट कर आते हैं और कैसे जाते हैं, उनका कोई स्थान विशेष लोक विशेष कहां पर है, ब्राह्मणों को कैसे पता चलता है कि वे आ गये हैं और ब्राह्मणों को खिलायें गये भोजन से उनकी तृप्ति कैसे होती है आदि-आदि कई प्रश्न हैं जिन पर हमें विचार करना हैं लेकिन उससे पूर्व एक बात पर हम ब्राह्मणों की चतुराई को अवश्य स्वीकार करते हैं। वह यह है कि उन्होंने जो जाल फैलाया और क्या मूर्ख क्या बुद्धिमान, क्या शिक्षित क्या अशिक्षित सभी को उस जाल में जकड़ लिया है कि लाख समझाने पर भी बात उनकी समझ में आती नहीं और वहीं करते हैं जो ब्राह्मण लोगों ने बताया। हम यहां पर अपनी भाषा में थोड़ा बदलाव कर रहे हैं, आशा है कि उसे आप भी स्वीकार करेंगे। ब्राह्मण शब्द को हम यहां 'बाहमण' लिख रहे हैं, इसका अन्तर भी हम आगे चलकर स्पष्ट कर देंगे।

इस समय तो हम इतना ही विचार करेंगे कि क्या संसार में कोई ऐसा व्यक्ति दिखा सकता है कि वह किसी को सामने बैठा कर स्वयं भोजन करे और उस सामने वाले का पेट भर जाये? यह किसी प्रकार भी संभव नहीं है। और जब सामने बैठा हुए का भी पेट नहीं भरता तो जो प्रत्यक्ष है ही नहीं, उसका पेट भरने का दावा करने वाला व्यक्ति कितना बड़ा झूठा, छली और चालाक है इसका तनिक अनुमान तो लगाईयें! और लोग उस पर बड़ा विश्वास करके यह कार्य कर रहे हैं, आश्चर्य! घोर आश्चर्य!!

यह विचार लोगों के अन्दर किस प्रकार से प्रविष्ट कराया गया, इतनी प्रबलता से मन में बैठाया गया कि पीढ़ी-दर-पीढ़ी तक एक संक्रमण की भांति चलता चला गया और रक्त में जाकर ऐसा जम गया कि निकाले नहीं निकलता। उसके पीछे कारण यह है कि भारत के लोग धर्म के कार्यों में स्वभाव से ही रूचि और निष्ठा रखने वाले हैं। अतः कुछ स्वार्थी और पेटार्थी लोगों ने धर्म के नाम पर जो कुछ भी प्रचलित कर दिया धर्म भीरू और भोले लोगों ने उसी को स्वीकार कर लिया। यह प्रथा उस समय की है जब देश में अज्ञान का अन्धकार फैल चुका था और सारी व्यवस्था इन पोंगापन्थियों के वश में आ चुकी थी। सच्चे ब्राह्मणों का अभाव हो चुका था और स्वार्थी तत्व अपनी चरम सीमा पर थे। एक ऐसा व्यवसाय, एक ऐसा उद्योग खड़ा किया जा रहा था जिसमें लागत शून्य थी और लाभ का कोई ठिकाना ही न था। उस समय यह श्राद्ध की प्रथा चतुर लोगों ने प्रचलित की। देश की 90-95 प्रतिशत जनता पढ़ना लिखना छोड़ चुकी थी और जो कुछ भी श्री महाराज ने बता दिया वहीं पत्थर पर लकीर थी। यह विचार शून्यता और अकर्मण्यता ही अन्धविश्वास की जननी हुआ करती है। केवल श्राद्ध ही नहीं अपितु बहुत सारी कुप्रथायें भी उसी काल की देन है। मूर्ति, पूजा, अवतारवाद, तीर्थ आदि में स्नान से पापों की समाप्ति, कल्पित स्वर्ग नरक, कल्पित देवता, बलिप्रथा, भूत प्रेत, जादू टोना, फलित ज्योतिष, मन्त्र तन्त्र, जाति-पाति ये सारी प्रथायें लगभग पौराणिक काल अथवा मध्य युग की ही प्रचलित है। कुछ धीरे-धीरे जुड़ती चली गई। पुराणों और तन्त्रादि ग्रन्थों में इनका उल्लेख संस्कृत भाषा में कर दिया गया और उनका नाम शास्त्र रख दिया गया। अब जब सब कुछ शास्त्रों में लिख दिया गया तो उसका विरोध भला कौन कर सकता था? बस शुरु हो गया अन्धेर युग और भेड़ें अपनी चाल चल पड़ी। भूदेवों को और क्या चाहिये था? व्यापार चल निकला और पौ बारह होती गई।

यह कितने आश्चर्य की बात है कि एक ओर तो समाज में यह मान्यता है कि जीव एक शरीर को त्याग कर दूसरे शरीर को धारण कर लेता है, अर्थात् उसका दूसरा जन्म हो जाता है और दूसरी ओर वही समाज यह स्वीकार करता है कि पितृपक्ष में पितर लोग (मरे हुए लोग) भोजन करने के लिये आते हैं। हमारा एक छोटा सा प्रश्न यहां पर यह है कि घर के वृद्ध लोगों ने मरने के पश्चात् दूसरा शरीर धारण कर लिया तो क्या इस समय में वे उस शरीर को त्याग कर आते हैं? अरे भाई! आप लोग भी तो दूसरे ही जन्म में इस समय रह रहे हैं क्या आप शरीर त्याग कर कहीं अपने पूर्व जन्म के परिवार में भोजन करने गये? उस पर भी विडम्बना यह कि आपने स्वयं नहीं किया अपितु किसी अन्य ने किया और पेट भर गया आपका? मान गये भाई! क्या गजब का विज्ञान है!! जब वृद्ध माता-पिता या दादा-दादी जीवित थे तब तो प्रतिदिन कलह क्लेश रहता था और पुत्र पौत्रादि यह कामना करते थे कि इनसे कब छुटकारा मिल सकेगा और जब मर गये तो इतना प्यार और श्रद्धा उमड़ आई कि उनके नाम पर खीर, हलवा, पूड़ी आदि पकवान बना-बना कर लोगों को खिलाने लगे। यहां तक कि कौवों को भी दावत दी जाने लगी। मान गये श्रीमान् जी! जो जाल बाहमणों ने फैलाया उसका जवाब नहीं।

तो आईये! विचार करते हैं कि पितर कौन हैं और श्राद्ध क्या है? ''पान्ति पालयन्ति रक्षन्ति अन्न-विद्या सुशिक्षा आदि दानैः ते पितरः'' अर्थात् जो अन्न, विद्या, सुशिक्षा आदि से पालन पोषण और रक्षा करते हैं वे पितर कहलाते हैं। देवा वा एते पितरः (गोपथ०उ० १/२४), स्विष्टकृतो वै पितरः (गोपथ. उ० १/२१), सुख सुविधाओं द्वारा पालन पोषण करने वाले और हित सम्पादन करने वाले विद्वान व्यक्ति पितर कहलाते हैं। मर्त्याः पितरः (शत० २/१/३/४) मनुष्य ही पितर हैं मृत नहीं। अब ये पितर कितने प्रकार के हैं?

(१) सोमसदः जो ईश्वर और सोमयज्ञ में निपुण और शान्ति आदि गुणों से युक्त हैं।

(२) अग्निष्वाताः जो परमेश्वर या भौतिक अग्नि उनके गुण ज्ञात करके अच्छी प्रकार अग्निविद्या सिद्ध करते हैं।

(३) बर्हिषदः जो सबसे उत्तम परब्रह्म में स्थिर होकर शम, दम सत्यादि गुणों से वर्तमान हैं।

(४) सोमपाः जो यज्ञ करके सोमलता आदि उत्तम औषधियों के रस का पान करने वा कराने वाले हैं।

(५) हविर्भुजः जो अग्निहोत्रादि यज्ञ करके वायु और वृष्टिजल की शुद्धि द्वारा सब जगत का उपकार करते और जो यज्ञ से अन्न जल की शुद्धि करके खाने पीने वाले हैं।

(६) आज्यपाः आज्य, घृत। स्निग्ध पदार्थ और विज्ञान को कहते हैं, जो उनके दान से रक्षा करने वाले हैं।

(७) सुकालिनः मनुष्य शरीर को प्राप्त हो के ईश्वर और सत्यविद्या के उपदेश का जिनका श्रेष्ठ समय और जो सदा उपदेश में वर्तमान हैं।

(८) यमराजः जो पक्षपात को सदा सत्य, न्याय-व्यवस्था में ही लगे रहते हैं।

(९) पितृ-पितामह-प्रपितामहः जो ब्रह्मचर्यपूर्वक विद्या पढ़ के वायु रूद्र और आदित्य संज्ञक गृहस्थी हैं।

(१०) मातृ-पितामही-प्रपितामहयः पित्रादिकों के समान विद्या स्वभाव वाली स्त्रियां।

(११) सगोत्राः जो समीपवर्ती ज्ञाति के लोग हैं।

(१२) आचार्यादि सम्बन्धिनः जो पूर्ण विद्या के पढ़ाने वाले और श्वसुर आदि सम्बन्धी स्त्री पुरूष हैं।

(क्रमशः)

पृष्ठ 2 का शेष-महर्षि दयानन्द के जीवन में...

५. स्वार्थी जनों द्वारा स्वामी जी की प्राण-हानि का प्रयास-भारतवर्ष में उस समय महर्षि देव दयानन्द ही ऐसे अकेले साधु थे जो धर्मान्धिता, छुआ-छूत, अन्ध-विश्वास, पाखण्ड, जातिगत् भेदभाव और अशिक्षा के विरूद्ध जूझ रहे थे। प्रबुद्ध लोग उनके अनुयायी बन सद्धर्म प्रचार में सहयोगी हो गये थे। परन्तु पाखण्डी और ढ़ोंगी लोग उनके प्राण लेने में उतर गये थे।

शहबाजपुर (उ.प्र.) में रहते हुए ठाकुर गंगा सिंह उनके भक्त बन गये थे। नित्य उनके प्रवचन सुनने जाते। एक दिन दो वैरागी बाबा ठाकुर गंगा सिंह जी के पास आये और उनसे कुछ समय के लिए अपनी तलवार दे देने के लिए कहा। उन्होंने तलवार लेने का कारण पूछा तो वे आवेश में बोले-''गप्पाष्टिक दयानन्द के जीवन का हम अन्त कर देना चाहते हैं। वह देवी-देवताओं का अपमान करता है। भागवत् का खण्ड़न करता है। अब वह हमारे हाथों से बचकर कहीं नहीं जा सकता।

ठाकुर गंगा सिंह ने कहा-''वे तो उत्तम साधु है। उनका संग करने के बाद ही आप उनको समझ सकोगे। याद रखना इस विचार को लेकर पुनः मेरे पास आने का साहस न करना। अन्यथा इसका परिणाम अच्छा नहीं होगा। ऐसा सुनकर वे चले गये। इसके उपरान्त ठाकुर साहब महर्षि जी की सेवा में पधारे और उन्हें वैरागियों की पूरी घटना कह सुनाई। महर्षि जी मुस्कुराए और बोले ''मेरा वध करने का सामर्थ्य उनमें नहीं है। आप निश्चिन्त होकर विश्राम करिये। ''इस पर भी गंगा सिंह ठाकुर, पूरी रात महर्षि जी कि सेवा में प्रहरी की तरह जागते रहे।

६. वैष्णव मतावलम्बी द्वारा महर्षि जी की प्राणहरण की चेष्टा: आश्विन सुदि १२ संवत् १८३१ (सन् 1874 ई.) को महर्षि जी ने मुम्बई निवासियों के आग्रह पर उस नगर में प्रवेश किया। नगर वासियों ने रेलवे स्टेशन पर उनका भव्य स्वागत किया और गोसाईयों के अखाड़े से बालुकेश्वर पर उनको ठहरा दिया। श्रोताओं की संख्या अधिक होने के कारण कोट मैदान में एक विशाल मण्डप का प्रबन्ध किया गया। महर्षि जी के प्रवचनों को सुनने के लिए हजारों की संख्या में लोग सभा भवन पर नित्य ही उपस्थित होते। पाखण्ड की रीढ़ पर चोट करने से महर्षि जी कभी नहीं चूकते थे, इसलिए महर्षि जी जहाँ भी जाते वहीं विरोधियों की भी कमी न होती। उस समय मुम्बई में वैष्णव मत् का अच्छा प्रभाव था। उनका प्रचार था कि तन, मन, धन सब गुरू के अर्पण। महर्षि जी ने इसका घोर विरोध किया। जब सर्वस्व ही गुरू को समर्पित कर दिया तो-परिवार व समाज के लिए क्या शेष रह गया? इस समर्पण की आड़ में आवांछित घटनाएँ घट जाने की सम्भावना बनी रहती है। यह सुनकर वैष्णव मतावलम्बी जीवन गोसाई महर्षि जी पर अति क्रोधित हुआ। इस बात की जानकारी महर्षि जी को हो गई थी। उसने अपने षडयन्त्र का माध्यम महर्षि जी के सेवक बलदेव सिंह को बनाया। बलदेव लोभ में फंस गया। एक हजार रूपयों की राशि के मोह ने उसे अन्धा बना दिया। जीवन गोसाई खुश था। वह समझता था कि बलदेव सिंह को महर्षि जी का देहावसान हो जाने पर एक हजार रूपये देने के लिए लिखित आश्वासन दे दिया और पाँच रूपये और एक सेर मिठाई अग्रिम उसे दे दी थी।

जब बलदेव महर्षि जी के सामने आया तब उसके चेहरे के भाव महर्षि जी को बदले-बदले लगे। उनके मन में सन्देह उत्पन्न हो गया। उन्होंने उससे पूछ लिया-गोसाईयों के यहाँ गया था? बलदेव सिंह का शरीर कांपने लगा। उसने गर्दन हिलाकर हाँ भी भरी। महर्षि जी मुस्कुराए और बोले-तो दयानन्द के सांसों का हरण करने के लिए कितने में सौदा तय हुआ?'' बलदेव सिंह महर्षि जी के चरणों में गिर पड़ा और उसने पूर्व घटी पूरी घटना कह सुनाई। उसने क्षमा कर देने के लिए-महर्षि से प्रार्थना की और भविष्य में गोसाईयों के यहाँ न जाने की प्रतिज्ञा की।

महर्षि जी ने उसे क्षमा तो कर दिया, परन्तु उसको अपने पास नहीं रखा। जीवन गोसाई अपने इस षड्यन्त्र में सफल नहीं हुआ, तो उसने दूसरी चाल चली उसने भाड़े पर चार गुण्ड़े महर्षि दयानन्द की हत्या कर देने के लिए तैयार किये। महर्षि जी नित्य नियम से समुद्र तट पर भ्रमण के लिए जाया करते थे। वे गुण्डे महर्षि जी का पीछा करने लगे। महर्षि जी को समझते देर नहीं लगी। एक दिन महर्षि जी उसके सामने खड़े हो गये और गम्भीर वाणी में कहा ''तुम मेरी हत्या करना चाहते हो?'' महर्षि जी के बोलते ही उनके पैरों तले जमीन खिसक गई। वे कुछ देर तक भी उनके सम्मुख खड़े नहीं हो सके। जीवन गोसाई इतना भयभीत हुआ कि उसने मुम्बई छोड़ दी। वह मद्रास भाग गया।

वैसे तो स्वामी जी को सत्तरह बार विष दिया गया, परन्तु इन्होंने न्यौलीक्रिया द्वारा विष को बाहर निकाल दिया। जिसमें एक घटना अधिक प्रचलित है कि एक धर्मान्ध ब्राह्मण ने स्वामी जी को पान में विष दे दिया। एक सैयद मोहम्मद नामक तहसीलदार जो स्वामी जी का अनन्य भक्त था उसको मालूम पड़ने से उस ब्राह्मण को जेल में डाल दिया और स्वामी जी को यह सारी बात बताई। स्वामी जी ने कहा कि हम तो लोगों को बन्धनों से मुक्ति दिलाने आये है, बन्धन कराने नहीं। तब तहसीलदार ने उस दोषी को छोड़ दिया। काशी के प्रसिद्ध शास्त्रार्थ के समय भी पण्ड़ित लोगों ने गुण्ड़े बदमाशों को अपने साथ ले जाने के लिए बुला रखा था। जिससे वे अपनी हार को छिपाने के लिए उनसे स्वामी जी के ऊपर ईंटे, पत्थर फैंकवाकर हल्ला-गुल्ला करवा सके। वैसा ही किया भी परन्तु रघुनाथ सहाय जो स्वामी जी का परम भक्त था उसने स्वामी जी की जान बचा ली। एक बार स्वामी जी अलकनन्दा बर्फीली नदी में उस पार जाने के लिए नदी में उतर गये और काफी कष्ट सहा। इसी प्रकार स्वामी जी नर्मदा नदी के तट पर जाते हुए उनको भीषण व भयंकर जंगलों की खाक छाननी पड़ी और जंगली भयंकर जानवरों से अपनी जान बचाई। परन्तु इस लेख में केवल छः बड़ी घटनाओं का विवरण किया है।

आशा है सुधिपाठकगण इस लेख को पढ़ कर अपने ज्ञान की वृद्धि करेंगें जिससे मेरा परिश्रम भी सार्थक होगा।

आर्य मर्यादा के ग्राहक महानुभावों की सेवा में

आर्य मर्यादा साप्ताहिक निरन्तर आपकी सेवा में पहुंच रही है। जिन आर्य मर्यादा के ग्राहकों ने अभी तक अपना वार्षिक शुल्क या पिछला शुल्क नहीं भेजा है उनसे विनम्र प्रार्थना है कि वह अपना वार्षिक शुल्क जल्द से जल्द भिजवाने की व्यवस्था करें। आर्य मर्यादा का वार्षिक शुल्क मात्र 100/- रुपये है और आजीवन सदस्यता शुल्क 1000/- रुपये है। इसलिये मेरी सभी ग्राहक महानुभावों से प्रार्थना है कि वह अपना शुल्क जल्द से जल्द भिजवाने की व्यवस्था करें। इसके साथ ही आर्य समाजों के पदाधिकारियों एवं सदस्यों से भी निवेदन है कि वह अधिक से अधिक आर्य मर्यादा के ग्राहक बनाने में सहयोग करें। आशा है आप का सहयोग हमें प्राप्त होगा।

-व्यवस्थापक आर्य मर्यादा

यतः सूर्य उदेत्यस्तं यत्र च गच्छति।
तदेव मन्येऽहं ज्येष्ठं तदु नात्येति किं चन।।

-अथर्व. १०.८.१६

भावार्थ-जिस सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर ने यह तेजः पुञ्ज सूर्य उत्पन्न किया, जिस जगदीश्वर की प्रेरणा से यही सूर्य अस्त होता है, उस परमात्मा को ही मैं सब से श्रेष्ठ और सब से बड़ा मानता हूँ। ऐसे समर्थ प्रभु को कोई उल्लंघन नहीं कर सकता। उसकी आज्ञा में ही सारे सूर्य चन्द्र आदि सब लोक लोकान्तर वर्त्तमान हैं। उस परमात्मा को उल्लंघन करने की किसी की भी शक्ति नहीं है।

आज्याहुतिमंत्रा: अथवा पवामानाहुतय:

ले.-अशोक आर्य पाकेट १/६१ रामप्रस्थ ग्रीन से. सैक्टर ७ वैशाली

विगत १७-१८वीं क्रिया के अंतर्गत हमने स्विष्टकृत आहुति तथा प्रजापतये आहुति दी थी। अब हम प्रधान होम की ओर आगे बढ़ते हैं। इस प्रधान होम में पवमान के लिए चार आहुतियाँ केवल घी की ही देते हैं। इस पवमान के इन चार मंत्रों को आज्याहुति भी कहते हैं। विगत में भी बताया गया है कि आज्या घी को कहते हैं। अत: यह चार आहुतियाँ केवल घी से ही देने का यहाँ आदेश है। संभवतया इस अग्निहोत्र की दैनिक क्रियाओं को करते हुए सामग्री कि इतनी मात्रा डाली जा चुकी है कि इससे समिधायें दब गई हैं, इसलिए अब केवल घी की अनेक आहुतियाँ डाली जाती है, ताकि अग्नि बुझने के स्थान पर घी के सहयोग से प्रचंड रूप धारण कर ले। इस क्रिया के चारों मन्त्र, जिनके साथ केवल यज्ञमान ने घी की आहुतियाँ देनी हैं, वह इस प्रकार हैं:-

ओं भूर्भुव: स्व। अग्न आयूंषि पवस आ सुर्वोजमिषं च न:।।
आरे बाधस्व दुच्छुनां स्वाहा।। इदमग्नये पवमानाय इदन्न मम।।१।। ऋग्वेद ४.१.४

शब्दार्थ

हे सर्वाधार, दु:खनाशक, सुखस्वरूप, अग्ने प्रकाशस्वरूप भगवान! आप न: हमारे आयूंषि जीवन को पवसे पवित्र करते तथा बढ़ाते हो। हमें, उर्ज बल च और इषं अन्न आ-सुव प्रदान करें। दुच्छुनां राक्षसों को आरे दूर बाधस्व दबाओ। स्वाहा मेरी यह वाणी सत्य हो। इदं यह हवि पवमानाय पवित्र करने वाले अग्निरूप प्रभु के लिए है, मेरा इस में कुछ भी अपना नहीं है।

व्याख्यान

सर्वाधार हे परमपिता परमात्मा! आपने ही इस सृष्टि को धारण किया है। इस सृष्टि का सब कुछ आप ही के आधार पर टिका हुआ है। आपके इशारे पर ही आपके इंगित मात्र पर ही इस सृष्टि की गति चल रही है। आप एक पल के लिए भी अपना हाथ हटा लें तो इस सृष्टि और इस पर रहने वाले सब प्राणियों का नाश निश्चित है। इसलिए आप सर्वाधार हो।

दु:खनाशक

हे प्रभु! आप ही इस सृष्टि के सब प्राणियों के दु:खों का नाश करने वाले हो। जब आपका आशीर्वाद किसी प्राणी को मिल जाता है, जब आपका वरदहस्त किसी प्राणी के सर पर आ जाता है तो उसके सब दु:ख काफूर बनकर उड़ जाते हैं। इस प्रकार आपका आशीर्वाद पाने के लिए सब प्राणी यत्न करते रहते हैं, ताकि उनके दु:खों का नाश हो सके। इस कारण आप दु:खनाशक हैं।

सुखस्वरूप

सर्वाधार और दु:खनाशक होने के साथ ही साथ हे पिता! आप सुख स्वरूप भी हैं। इस जगत् में जितने भी प्राणी हैं, उन सब के लिए सुखों का स्रोत आप ही तो हैं। जहाँ प्रभु आप होते हैं, वहां सुख न हों, यह तो कभी संभव ही नहीं हो सकता। इस कारण हम सदा आपके आशीर्वाद का हाथ अपने सिरों पर देखने के लिए सदा ही लालायित रहते हैं। अत: परमपिता आप का एक गुण यह भी है कि आप सुख स्वरूप भी हैं।

यह परमपिता परमात्मा के इन तीन गुणों को, जिन्होंने हम ईश्वर के गौणिक नाम भी कहते हैं। इस तीन गुणों के माध्यम से परमात्मा को स्मरण करते हुए हम मन्त्र को इस रूप में जानने और इसके भावार्थ को आगे बढ़ाने का प्रयास करते हैं।

अग्निस्वरूप

हे प्रभु! आप अग्निस्वरूप भी है। यह अग्नि स्वरूप उस प्रभु का एक अन्य गुण है, इसे भी पिता के गुणवाचक नाम के रूप में हम लेते हैं। अग्नि के जो गुण होते हैं, वह सब परमात्मा से ही होते हैं और परमात्मा ने ही अग्नि को यह गुण दिए हैं। जैसे विगत में भी बताया गया था कि अग्नि में तेज होता है तो परमात्मा तेजों का भी तेजस्वी है। अग्नि सदा ऊपर उठती है, परमात्मा भी सदा सब से ऊपर ही होता है और जो उसके सच्चे भक्त होते हैं, उनका भी हाथ पकड़ कर उन्हें भी ऊपर उठा लेता है। अग्नि में जो कुछ डाला जाता है, वह सब सूक्ष्म होकर वायु मंडल में फैला देता है। इस डाले गए पदार्थ में जो गुण होते हैं, उन्हें यह अग्नि बढ़ा देता है, हजारों गुणा कर देता है और यदि इन पदार्थों में कोई अवगुण होता है तो यह अग्नि उसे नष्ट कर देता है। परमपिता परमात्मा भी सदा जीव मात्र के पापयुक्त कार्यों का दंड देकर, उन्हें पापमुक्त करता रहता है और उसके गुणों को बढ़ाता रहता है। जिस प्रकार अग्नि से सब ओर प्रकाश दिखाई देता है, उस प्रकार ही परमपिता परमात्मा भी सब के अन्दर ज्ञान का प्रकाश दिखाई देता है, उस प्रकार ही परमपिता परमात्मा भी सब के अन्दर ज्ञान का प्रकाश भी देता है।

पवित्र करते है

भगवान तो सब के पिता होने के कारण अपने सब बच्चों को सदा पवित्र और आगे बढ़ता हुआ देखना चाहते हैं। इसलिए जीवन के प्रत्येक क्षण वह हमारा मार्ग दर्शन कराते रहते हैं। हमारे बुरे कर्मों का दंड देकर हमें सदा क्षमा करते रहते हैं। इस प्रकार पापों का नाश करते हुए वह हमें पवित्र बनाते हैं।

परमात्मा अपनी संतानों को केवल पवित्र ही नहीं बनाता अपितु अपने बच्चों की उन्नति में भी रूचि रखता है। इस प्रकार वह सदा हमें आगे बढ़ने के लिए प्रेरणा देता रहता है, जिस प्रेरणा के उपदेशों पर हम चलते हैं तो वह प्रभु हमें आगे बढ़ने में, उन्नति करने में हमारी सहायता करता रहता है।

बल और अन्न दें

जीव अपने जीवन में कुछ खाता है, कुछ उपभोग करता है, तब ही वह बलवान् होता है और तब ही वह जीवित रह पाता है। इसलिए मन्त्र में जीव परमपिता से प्रार्थना कर रहा है कि हे प्रभु! मुझे पवित्र अन्न के भंडारों से भर दो। इस पवित्र अन्न का सेवन मैं और मेरा परिवार करे। इस अन्न को खाकर हम लोग बलों के स्वामी बनें क्योंकि जिस के पास बल नहीं, आज उसे कोई भी पसंद नहीं करता। जीवन के प्रत्येक क्षण उसे ठोकरें ही खानी होती है, अपमानित ही होना पड़ता है। इसलिए हम आप से यह प्रार्थना करते है कि हमें वह पवित्र अन्न दो, जिसको उपभोग करके हम बलवान् हों।

राक्षसों को दूर करें

इस मन्त्र के माध्यम से परमपिता परमात्मा से हम ने एक और प्रार्थना की है कि वह हमें राक्षसी प्रवृति वाले लोगों से बचावें। हमें इन दुराचारी राक्षसी प्रवृति वालों से बचाने के लिए इन राक्षसों को हमारे से दूर ही रखो। इतना दूर रखो कि यह राक्षस कभी भी हमारे निकट न आ सकें।

इस प्रकार हे पिता! मैं सदा आप के सत्य स्वरूप में रहूँ और इस स्वरूप को अपने जीवन में भी अपनाऊं। अत: मेरी वाणी से सदा सत्य शब्द ही निकलें। इस प्रकार इस मन्त्र के साथ मैं यह जो आहुति यज्ञकुंड में देने जा रहा हूँ, हे अग्नि स्वरूप प्रभो! इस आहुति की यह हवि हमें और इस वायुमंडल को पवित्र करने वाली हो। सब प्रकार की अपवित्रताओं को दूर कर सब ओर, सब दिशाओं को पवित्रता प्रदान करो।

मैं अग्निहोत्र करते हुए यह जो आहुति यज्ञ में दे रहा हूँ, इस आहुति का पदार्थ आप ही का दिया हुआ है। आपका दिया हुआ पदार्थ आप ही को अर्पण कर रहा हूँ। यह मैं सर्वमंगल की कामना से आपको भेंट कर रहा हूँ। इसमें मेरा कुछ भी नहीं है। इसके साथ ही इस क्रिया के एक मन्त्र की व्याख्या समाप्त हुई। अगले तीन मन्त्रों को हम बाद में लेंगे।

प्रतिभा आपकी - सहयोग हमारा
महाशय धर्मपाल
आर्य प्रतिभा विकास संस्थान
यूपीएससी सिविल सेवा परीक्षा
(IAS/IPS/IFS आदि)
की तैयारी कर रहे योग्य और मेधावी प्रतिभागियों की सहायता की घोषणा करता है।
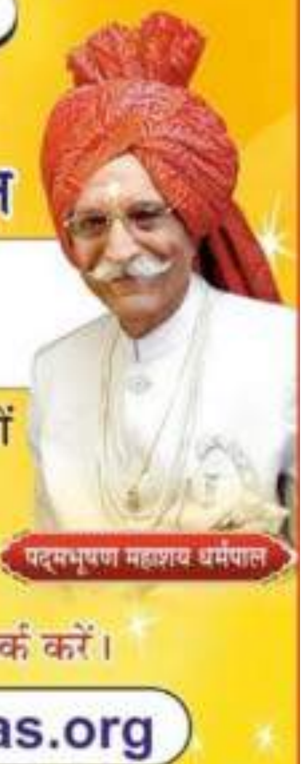

संस्थान द्वारा चयनित अभ्यर्थियों को दिल्ली में छात्रावास, कोचिंग, प्रशिक्षण एवं मार्गदर्शन सहित सभी सुविधायें प्रदान की जायेंगी।
इच्छुक उम्मीदवार ऑनलाइन आवेदन करने के लिए संपर्क करें।
वेबसाइट : www.pratibhavikas.org
आवेदन की अंतिम तिथि - 16 अक्टूबर 2020
अधिक जानकारी के लिए संपर्क करें :
9311721172 E-Mail : dss.pratibha@gmail.com
इस सूचना को अधिक से अधिक लोगों तक पहुचाएं

स्वामिनी आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब की तरफ से मुद्रक, प्रकाशक, सम्पादक प्रेम भारद्वाज द्वारा गायत्री प्रिंटिंग प्रैस, मण्डी रोड जालन्धर पंजाब से मुद्रित एवं गुरुदत्त भवन, चौक किशनपुरा, जालन्धर से प्रकाशित। सम्पादक-प्रेम भारद्वाज
पीआरबी एक्ट के तहत प्रकाशित सामग्री के चयन हेतु उत्तरदायी किसी विवाद का न्यायिक क्षेत्र जालन्धर होगा। आर एन आई संख्या 26281/74 E-mail: apspunjab2010@gmail.com, www.aryapratinidhisabha.org